मार्क्सवाद

परिचय माला 4

# पूँजीवादी जनवाद

शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन
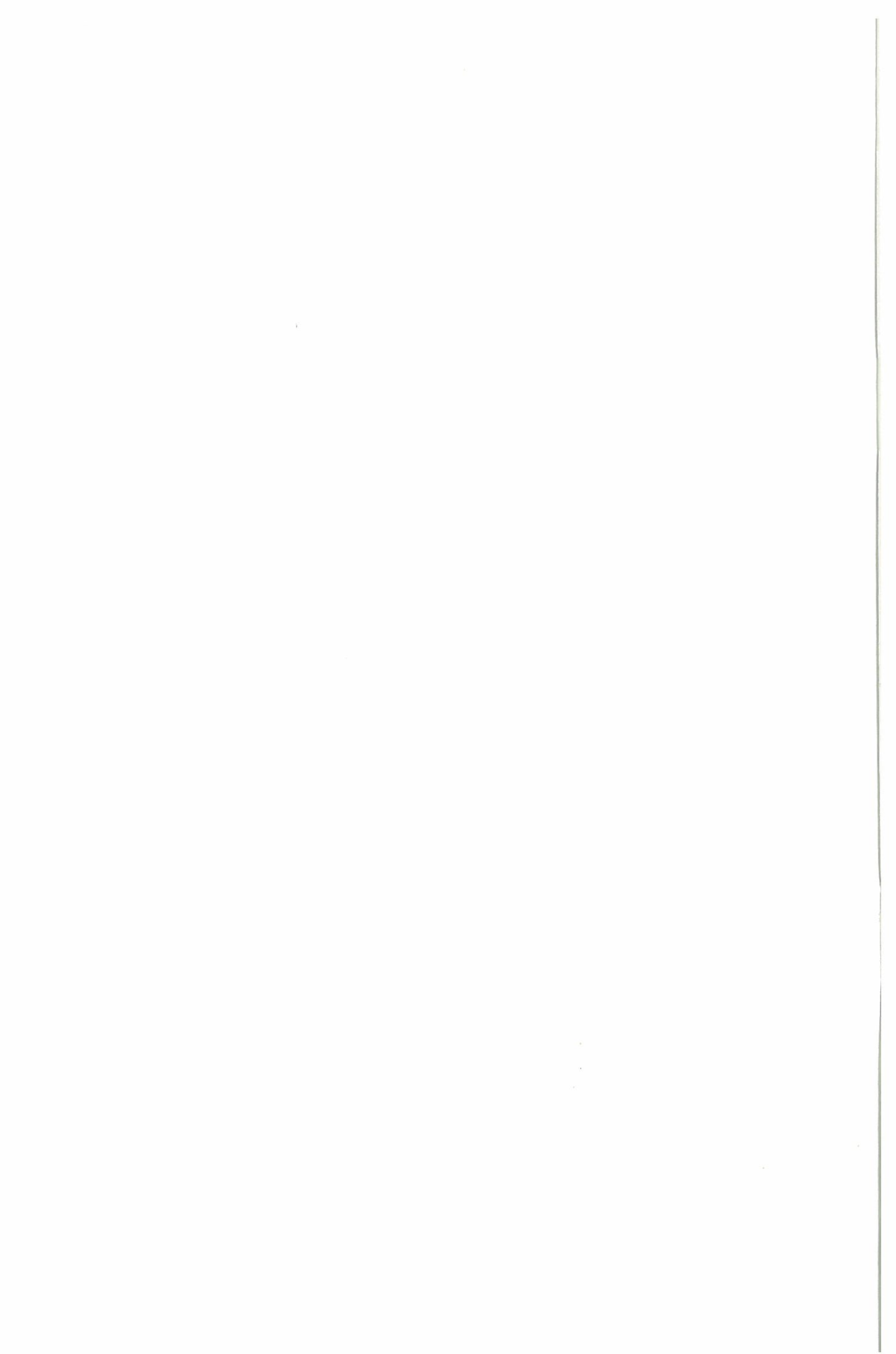
# पूँजीवादी जनवाद

लेखक
शिव वर्मा

# जनता का सवाल

आमतौर पर जनतंत्रवाद या जनवाद का अर्थ है जनता की राय पर चलना। राजनीति में जनवाद का अर्थ है जनता के बहुमत की राय से राज्य का काम चलाना और जनता को नागरिक अधिकार देना। आजकल पूँजीवादी देशों में जिस माने में यह शब्द इस्तेमाल होता है उसकी शुरुआत पूँजीवाद के उदय के साथ-साथ होती है।

मनुष्य सदियों से आजादी के लिए संघर्ष करता आया है। पिछली शताब्दियों में इस संघर्ष का रूप था सामन्तवाद विरोधी और उसका नेतृत्व करता था उस समय का उठता हुआ पूँजीपति वर्ग। उस समय की सामन्ती राजसत्ता उत्पादक शक्तियों के विकास में रुकावट थी। पूँजीवाद के विकास के लिए ऐसी राजसत्ता की जरूरत थी जिसमें रोजगार की, एक जगह से दूसरी जगह जाने की और आपसी होड़ की आजादी हो। इसके अलावा पुरानी संकुचित और एक व्यक्ति की मर्जी पर चलनेवाली राजसत्ता के मातहत पैदावार की उन्नति असम्भव थी। अस्तु पूँजीपति वर्ग निरंकुश राजा को हटाकर उसकी जगह पर अपने प्रतिनिधियों की राजसत्ता कायम करना चाहता था। वह उस पर अपना अधिकार जमाना चाहता था, पर विजय पाने के लिए उठते हुए पूँजीपति वर्ग को साथियों और सहयोगियों की आवश्यकता पड़ी। उसने जनवाद का नारा दिया और आजादी, बराबरी तथा भाईचारे के नाम पर मजदूरों और किसानों से अपील की। इस संघर्ष के फलस्वरूप कई देशों में पूँजीवादी जनतंत्रवाद कायम हो गया। वह नये उठते हुए पूँजीपति वर्ग का जनवाद था।

इसमें शक नहीं कि यह पूँजीवादी जनवाद सामन्तवादी हालातों के मुकाबले अच्छा और प्रगतिशील था। सामन्तवादी जमाने में तो कोई जनमत का नाम तक नहीं जानता था। राजा, उसके दरबारियों, मुसाहिबों और अफसरों की जबान ही सब कुछ थी। राजा या सामन्त की झक ही न्याय था। मुँह से निकला कि गर्दन उड़ा दो और उड़ा दी गयी। इनका हलावा अब भी हमें इतिहास और पुरानी कहानियों में मिलता है। पूँजीपति वर्ग ने सामन्तवाद पर विजय पाने के बाद या तो राजा को हटा दिया या उस पर वैधानिक रोक लगा दी और सैद्धान्तिक तौर पर धारा सभाओं या पार्लियामेन्टों की शक्ल में जनता और जनमत को बड़ा मान लिया। लेकिन इन सबके बावजूद यह जनवाद पूँजीपति वर्ग का जनवाद था-- उस वर्ग का जनवाद था जो तादाद में बहुत कम है और इसलिए यह सच्चा जनवाद नहीं था।

जनवाद के वर्ग स्वरूप को ढकने के लिए पूँजीवादी लेखकों और प्रचारकों ने उसे आम जनवाद या "शुद्ध जनवाद" का जामा पहनाने का प्रयत्न किया है। यह लोग इस

बात को एकदम भुला देते हैं कि जो लोग रोजी-रोटी के लिए पैसेवालों के दर के भिखारी हैं, जिनके पास काम करने की अपनी ताकत को छोड़कर और कोई साधन नहीं है, वे पैसेवालों के मुकाबिले आजादी और बराबरी का उपभोग कर ही नहीं सकते। आर्थिक आजादी के बगैर सामाजिक और राजनीतिक आजादी कोई मानी नहीं रखती। इस सत्य पर पर्दा डालकर यह लोग साफ शुद्ध जनवाद को ही उछालते आये हैं।

अपने को जनवादी कहनेवाले पूँजीवादी देशों पर अगर हम निगाह डालें तो हमें पता चलेगा कि पूँजीपति वर्ग का यह शुद्ध जनवाद दरअसल धोखा है, जनता को गुमराह करने की एक चाल है। लेनिन के शदों में– **"पूँजीवादी समाज में जनवाद हमेशा पूँजीवादी शोषण के संकुचित घेरे के अन्दर ही सीमित रहता है और इस तरह दरअसल यह जनवाद सिर्फ अल्पमत के लिए ही होता है-- दौलतमन्दों और अमीरों के लिए।... पूँजीवादी शोषण से पैदा हुई हालतों की वजह से आजकल का गुलाम मजदूर गरीबी और अभाव के नीचे इतना दबा रहता है कि वह जनवाद और राजनीति के बारे में सोच भी नहीं सकता। आमतौर पर आबादी का अधिक भाग सामाजिक और राजनीतिक जीवन में भाग लेने से वंचित ही रखा जाता है।"**

**"पूँजीवादी जनवाद अल्पमत का, अमीरों का जनवाद है।" पूँजीवादी समाज में "हमें चारों तरफ जनवाद पर रोक ही रोक दिखायी पड़ती है। गरीबों पर थोपी गयी यह रोक, अलगाव और रुकावटें उन लोगों को बहुत छोटी जचती हैं जिन्होंने जीवन में कभी अभाव और रुकावटों का सामना नहीं किया और जो कभी दलित वर्गों तथा जन-जीवन के सीधे सम्पर्क में नहीं आये। और 100 में से 99 नहीं तो 90 पूँजीवादी लेखक, प्रकाशक और राजनीतिज्ञ इसी दर्जे में आते हैं। लेकिन इन रुकावटों और बाधाओं का योग गरीबों को राजनीति से निचोड़कर बाहर कर देता है।"** (राजसत्ता और क्रान्ति)।

सच तो यह है कि जिस मनुष्य को खाना, कपड़ा, मकान, बच्चों की शिक्षा की चिन्ता और मन की अशान्ति खा रही हो, जो भूख और सर्दी से तड़प रहा हो और बराबर इस चिन्ता में जल रहा हो कि कल उसको और उसके बच्चों को रोटियाँ मिलेंगी या नहीं, वह इस हालत में नहीं है कि अपने प्रतिनिधियों को चुन सके। ऐसी हालत में पूँजीवादी समाज में जनवाद केवल धोखा बनकर रह जाता है। इस जनवाद में मजदूरों और किसानों को आजादी होती है बेरोजगारी में भूख से तड़पने की, अशिक्षित रहकर अपमानित होने की और तरह-तरह की बीमारियों का शिकार बनकर समय से पहले ही मर जाने की।

इसके बावजूद भी पूँजीवादी देशों में पूँजीवादी जनवाद को शुद्ध जनवाद की शक्ल देकर समाजवाद के राजनीतिक विरोधी फासिस्ट तानाशाही और सर्वहारा एकाधिपत्य (बहुमत का जनवाद) में कोई फर्क नहीं देखते। वे यह देख नहीं पाते या देखना नहीं चाहते हैं कि फासिस्ट तानाशाही गुलामी, पतन और भूख को बढ़ाती है जब कि सर्वहारा एकाधिपत्य उपरोक्त बुराइयों को दूरकर जनता की आजादी और संस्कृति को विकसित

करता है और श्रेणीरहित समाज स्थापित करने का साधन बनता है।

पूँजीवादी लेखक यह नहीं देख पाते कि जनतंत्रवाद या एकाधिपत्य किस वर्ग का है और इसलिए उनका शुद्ध जनवाद एक हवाई चीज बनकर रह जाता है। वर्ग समाज में जो चीज एक वर्ग के लिए जनवाद है वह दूसरे वर्ग के लिए तानाशाही है, यह साधारण बात उनकी समझ में नहीं आती।

सवाल आम जनवाद और तानाशाही का नहीं है। सवाल है पूँजीवादी जनवाद और सर्वहारा या समाजवादी जनवाद का या पूँजीवादी तानाशाही और सर्वहारा एकाधिपत्य का और इसी दायरे के अन्दर हमें जनवाद के दोनों पहलुओं पर विचार करना है।

## पूँजीवादी जनवाद

पूँजीवादी जनवाद की मुख्य और बुनियादी विशेषता यह है कि यह शोषक (अल्पमत) के तो हक में जाता है और मेहनत करने वाले बहुमत के खिलाफ। इस जनवाद का आधार पैदावार के साधनों पर व्यक्तिगत प्रभुत्व है। आगे चलकर हम देखेंगे कि ऐसा जनवाद रस्मी, झूठा और अधूरा जनवाद है। यह जनवाद अमीर उमराओं और रईसों के लिए तो स्वर्ग होता है और शोषितों, गरीबों के लिए धोखा और मृगजाल।

पूँजीवादी जनवाद के समर्थक उसके असली वर्ग स्वरूप को छिपाने के लिए और शोषितों पर शोषकों के प्रभुत्व को ढकने के लिए उसे 'आजादी' "बराबरी", "भाईचारा" जैसे अच्छे-अच्छे शब्दों में लपेटने की कोशिश करते हैं।

इस सुन्दर शब्दों को अन्धी तोता रटन्त ठहराते हुए लेनिन ने लिखा था--

**"सर्वहारा वर्ग के दृष्टिकोण से सवाल को सिर्फ एक ही शक्ल में रखा जा सकता है, किस वर्ग के अत्याचार से आजादी? किन वर्गों के बीच बराबरी? व्यक्तिगत पूँजी पर आधारित जनवाद या व्यक्तिगत पूँजी की प्रथा को खत्म करने के लिए संघर्ष पर आधारित जनवाद।"** (लेनिन, सेलक्टेड वर्क्स दो भागवाला संस्करण भाग दो)।

सोवियत संघ के विधान पर अपनी रिपोर्ट पेश करते हुए कॉ. स्तालिन ने पूँजीवादी जनवाद के बारे में कहा था--

"वे नागरिक समानता की बात करते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि मिल मालिक और जमींदार समाज की दौलत के मालिक हैं और उनकी आवाज राजनीति में वजन रखती है। और मजदूरों तथा किसानों के पास न दौलत है न राजनीति ताकत। दूसरे शब्दों में अगर एक शोषक है और दूसरा शोषित तो उन दोनों के बीच अर्थात मिल मालिक और मजदूर के बीच जमींदार और किसान के बीच कभी सही मानी में समानता नहीं हो सकती।

या फिर, वे व्याख्यान देने, सभाएँ करने और अखबार निकालने की आजादी की बात करते हैं, लेकिन यह भूल जाते हैं कि मजदूर वर्ग के लिए यह सारी आजादियाँ निरी

खोखली गपबाजी हैं और उसके पास सभाएँ करने के लिए न तो अच्छी जगह है, न छापेखाने, न काफी तादाद में कागज।

इसलिए लेनिन के शब्दों में पूँजीवादी प्रजातन्त्र, वह कितना ही जनवादी क्यों न हो, पूँजीपतियों द्वारा मजदूरों को दबाने की मशीन मात्र है।

आज साम्राज्यवाद के युग में एक तरफ तो पूँजीपति अपने रस्मी और अधूरे जनवाद को दफनाकर राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय दोनों क्षेत्रें के प्रतिक्रियावाद का नंगा राज्य कायम करने की कोशिश कर रहे है(मिसाल के लिए आज की इंग्लैण्ड और अमरीकी राजनीति), दूसरी तरफ साम्राज्यवाद के हिमायती जनवाद की रक्षा के नाम पर दुनिया-भर की आजादी के ठेकेदार भी बनते जा रहे हैं।

मोटे तौर पर वह कौन-कौन सी आजादियाँ, अधिकार और समानताएँ हैं जिन्हें पूँजीवादी जनवाद का हिस्सा बताकर साम्राज्यवादी उनकी रक्षा का दम भरते हैं? यह हैं, 'प्रेस की आजादी', 'चुनाव की आजादी', 'भाषण की आजादी', 'सभाएँ करने की आजादी', 'संगठन बानाने की आजादी', 'शिक्षा का अधिकार', 'न्याय, रोजी कमाने के अधिकार की समानता', 'राष्ट्रीय समानता' आदि।

आइये पूँजीवादी जनवाद की इन मुख्तलिफ आजादियों पर भी एक निगाह डालते चलें।

## प्रेस की आजादी

पूँजीवादी देशों में न जाने कितने अखबार निकलते हैं। गैर बुनियादी सवालों को लेकर इन अखबारों में आपस में तू-तू, मैं-मैं भी होती है। एक ही सवाल पर उनकी अलग-अलग राय भी होती हैं। कभी-कभी सरकार या राजसत्ता को चलाने वालों की आलोचना भी इन समाचार-पत्रों में देखने में आती है। पूँजीवादी जनवाद के समर्थक इन सब बातों को आसमान तक उछालते हुए कहते हैं देखो इस आदर्श जनवाद में समाचार-पत्रों को कितनी आजादी है।

दरअसल पूँजीवादी समाज में "प्रेस की आजदी" के मानी हैं पूँजीपतियों द्वारा प्रेस पर अधिकार जमाने की आजादी और फिर उसी प्रेस के सहारे अपने हक में जनमत तैयार करने की आजादी। लेनिन के शब्दों में "पूँजीवादी समाज में प्रेस की आजादी के मानी हैं प्रेस की तिजारत करने की आजादी, जनता को प्रभावित करने, अपने हक में गुमराह करने की आजादी : प्रेस की आजादी के मानी हैं प्रेस रखने की आजादी, प्रेस जो कि जनमत को प्रभावित करने के लिए पूँजी लगाकर खड़ा किया गया सबसे ताकतवार हथियार है।"

प्रेस या अखबार के लिए पूँजी चाहिए। मजदूरों या किसानों के पास पूँजी नहीं होती इसलिए वे प्रेस भी नहीं खड़ा कर सकते, अखबार भी नहीं निकाल सकते। जिनके पास प्रेस चलाने के साधन ही न हों उनके लिए "प्रेस की आजादी" नाम का वाक्य सुन्दर होते

हुए भी बेमानी अर्थात अर्थहीन है।

हमारे देश के अधिकतर बड़े-बड़े अखबार किसी न किसी पूँजीपति के हैं और उसकी नीति और विचारधारा का प्रचार करते हैं। यह अखबार जनता की न्यायपूर्ण माँगों को गलत साबित करते हैं, जन आन्दोलनों को बदनाम करते हैं, जनता में फूट डालने की कोशिश करते हैं और जन संगठनों तथा जनता की पार्टियों पर तरह-तरह के हमले करते हैं। वे पूँजीपतियों के हितों को न्यायपूर्ण बताते हैं, उनके शोषण पर पर्दा डालते हैं, चुनावों में जनविरोधी तत्त्वों को जिताने की कोशिश करते हैं।

अगर हम देश के बड़े-बड़े अखबारों पर सरसरी निगाह डालें तो हमें "प्रेस की आजादी" की 'खूबसूरती' का राज समझ में आ जायेगा। मिसाल के लिए नीचे दिये हुए खास-खास अखबारों पर नजर डालिए।

| अखबारों का नाम | विवरण | मालिक का नाम |
|---|---|---|
| 1. हिन्दुस्तान टाइम्स | अंग्रेजी दैनिक, दिल्ली से | बिड़ला |
| 2. हिन्दुस्तान | हिन्द दैनिक, दिल्ली से | बिड़ला |
| 3. साप्ताहिक हिन्दुस्तान | हिन्दी साप्ताहिक, दिल्ली से | बिड़ला |
| 4. कादम्बिनी | हिन्दी मासिक, दिल्ली से | बिड़ला |
| 5. टाइम्स ऑफ इण्डिया | अंग्रेजी दैनिक, दिल्ली, मुम्बई लखनऊ, पटना, जयपुर, बंगलौर तथा अहमदाबाद | शाहू जैन ग्रुप |
| 6. नवभारत टाइम्स | हिन्दी दैनिक, दिल्ली, मुम्बई | शाहू जैन ग्रुप |
| 7. धर्मयुग | हिन्दी साप्ताहिक, मुम्बई | शाहू जैन ग्रुप |
| 8. इकनॉमिक टाइम्स | दैनिक अंग्रेजी दिल्ली, मुम्बई | शाहू जैन ग्रुप |
| 9. माधुरी | फिल्मी साप्ताहिक, हिन्दी, मुम्बई | शाहू जैन ग्रुप |
| 10. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक, दिल्ली, मद्रास | गोयनका |
| 11. जनसत्ता | हिन्दी दैनिक, दिल्ली से | गोयना |
| 12. विश्वमित्रा | हिन्दी दैनिक, कलकत्ता, मुम्बई, कानपुर, पटना | के.सी.अग्रवाल |
| 13. पायनियर | अंग्रेजी दैनिक, लखनऊ, कानपुर | थापर ग्रुप |
| 14. स्वतन्त्र भारत | हिन्दी दैनिक, लखनऊ कानपुर | थापर ग्रुप |
| 15. स्टेट्मैन | अंग्रेजी दैनिक, कलकत्ता, टाटा | दिल्ली |

आप देखेंगे कि कुछ एक को छोड़कर देश के प्रायः सभी बड़े अखबार इस चिट्ठे में आ जाते हैं। फिर भी यह लिस्ट पूरी नहीं की जा सकती। इनके अलावा कितने ही मासिक व साप्ताहिक हैं जिनके यह लोग सीधे मालिक हैं।

मिसाल के लिए नीचे हम एक पूँजीपति (सेठ गोयनका) द्वारा संचालित पत्र-पत्रिकाओं की सूची दे रहे हैं। इससे आपको इस बात का पता चल जायेगा कि अपने देश के समाचार पत्रों पर पूँजीपतियों का शिकंजा कितना तगड़ा है और उन्होंने प्रेस की आजादी को किस प्रकार अपनी तिजोरियों में कैद कर रखा है।

| | | |
|---|---|---|
| 1. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | बम्बई |
| 2. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | दिल्ली |
| 3. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | अहमदाबाद |
| 4. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | मदुरई |
| 5. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | विजयवाड़ा |
| 6. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | बंगलौर |
| 7. इण्डियन एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | मद्रास |
| 8. फाइनेन्शियल एक्सप्रेस | अंग्रेजी दैनिक | बम्बई |
| 9. लोकसत्ता | मराठी दैनिक | बम्बई |
| 10. कन्नड़ प्रभा | कन्नड़ दैनिक | बंगलौर |
| 11. दिभामानिक | तामिल दैनिक | मदुरई |
| 12. दिभामानिक | तामिल दैनिक | मद्रास |
| 13. आंध्र प्रभा | तेलगु दैनिक | विजयवाड़ा |
| 14. आंध्र प्रभा | तेलगु दैनिक | बंगलौर |
| 15. स्क्रीन | अंग्रेजी साप्ताहिक | बम्बई |
| 16. स्क्रीन | अंग्रेजी साप्ताहिक | मद्रास |
| 17. दिवमान कादिर | तेलगु साप्ताहिक | मद्रास |
| 18. आन्ध्र प्रभा सचित्र | तेलगु साप्ताहिक | मद्रास |

अमृत बाजार पत्रिका, नेशनल हेराल्ड आदि जैसे समाचार पत्रों को जो किसी एक पूँजीपति के नहीं है काबू में रखने के दो उपाय हैं। पहला सीधे तौर पर उन अखबारों में हिस्सेदार बनकर उनकी नीति पर असर डालना और दूसरा विज्ञापन के जरिये। यह दूसरा उपाय पूँजीपतियों के हाथों में बहुत ताकतवर हथियार है। पूँजीवादी होढ़ की दुनिया में कोई समाचार पत्र तब तक नहीं ठहर सकता जब तक विज्ञापनों से उसे काफी रुपया न मिलता रहे। पूँजीपति लाखों रुपया अपने माल के प्रचार के लिए विज्ञापनों में खर्च

करते हैं। वे यह विज्ञापन उन्हीं अखबारों को देते हैं जो पूँजीपतियों की नीति का समर्थन करते हैं। अमृत बाजार पत्रिका की सिर्फ विज्ञापन से आयी हुई आमदनी लाखों पर पहुँचती है। इस तरह यह अखबार किसी बड़े पूँजीपति का न होते हुए भी पूरे तौर पर उनके चंगुल में है, नहीं तो उसकी लाखों की आमदनी पर पानी फिर जाये। यही हालत स्वतंत्र कहलाने वाले दूसरे अखबारों की भी है। जो समाचार पत्र पूँजीवाद की बुनियाद पर आघात करते हैं उन्हें विज्ञापन भी नहीं मिलते और वे आज मरे कल मरे की हालत में ही चलते हैं।

विज्ञापनों से समाचार पत्रों को कितना लाभ होता है इसका अनुमान नीचे लिखे आँकड़ों से लगाया जा सकता है।

दिन-रात पूँजीपतियों का प्रचार करने वाले अपने देश के बड़े-बड़े अखबारों के गगनचुम्बी मुनाफों की तस्वीर इण्डियन फेडरेशन ऑफ जर्नलिस्ट के "वर्किंग जर्नलिस्ट" नामक अखबार के जुलाई 1966 के अंक में प्रकाशित हुई थी जिसमें 6 बड़े अखबारों का लेखा-जोखा लिया गया था। "वर्किंग जनर्लिस्ट" के अनुसार उनके मुनाफे इस प्रकार थे।

कई अखबार संगठनों के चिट्ठों (बैलेंस शीटों के अनुसार 1659 में) जहाँ। सिर्फ पाँच सेठिये अखबारों-- 1. कस्तूरी एण्ड सन्स लिमिटेड, 2. स्टेट्मैन लिमिटेड, 3. अमृत बाजार पत्रिका प्रा.लि., 4. बेनेट कोलमैन लि. (डालमिया ग्रुप के अखबार) और 5. हिन्दुस्तान टाइम्स लि. में हर अखबार ने पचास लाख से भी अधिक मुनाफा बटोरा था और इसमें भी दो ( स्टेट्समैन और बेनेट कोलमैन) ने एक करोड़ से भी अधिक आमदनी कमायी थी। वहीं 1664 में 15 समाचार पत्रों में से हर एक ने पचास लाख से ऊपर मुनाफा कमाया। उन 15 अखबारों के नाम और मुनाफे इस प्रकार हैं--

| | |
|---|---|
| 1. इण्डियन एक्सप्रेस मदुराई लि. | 1 करोड़ 82 लाख रुपया |
| 2. न्यूजपेपर्स एण्ड पब्लिकेशन्स | 53 लाख रुपया |
| 3. मातृभूमि | 74 लाख रुपया |
| 4. मलयाली मनोरमा | 60 लाख 70 हजार रुपया |
| 5. कस्तूरी एण्ड सन्स लिमिटेड | 2 करोड़ 25 लाख रुपया |
| 6. आनन्द बाजार पत्रिका प्रा.लि. | 1 करोड़ 89 लाख रुपया |
| 7. स्टेट्समैन लिमिटेड | 2 करोड़ 89 लाख रुपया |
| 8. अमृत बाजार पत्रिका प्रा. लि. (1963 के हिसाब से) | 1 करोड़ 55 लाख रुपया |

1965 में एक और संगठन दि ट्रिब्यून ट्रस्ट कायम हुआ है, जिसके पहले वर्ष का मुनाफा 48 लाख 8 हजार रुपये था जो दूसरे वर्ष में बढ़कर 58 लाख 8 हजार हो गया और यही सब अखबार देश का जनमत तैयार करते हैं।

इन हालातों में पूँजीवादी समाज में "प्रेस की आजादी", "प्रेस खरीदने" और "प्रेस चलाने" की आजादी रह जाती है और चूँकि समाज को शोषक वर्ग मजदूर, किसान और दूसरे मेहनतकश लोग न प्रेस खरीद सकते हैं और न उसकी आजादी का उपभोग कर सकते हैं, इसलिए उनके लिए यह आजादी कागजी है हवाई और झूठी है। यह तो हुई प्रेस की आजादी की बात। अब चुनाव की आजादी को लीजिए।

## चुनाव की आजादी

पूँजीवादी देशों में चुनावों में विभिन्न पार्टियाँ अपने-अपने उम्मीदवार खड़े करती हैं। बहुत से लोग स्वतंत्र रूप से खड़े होते हैं। इन पार्टियों और उम्मीदवारों के अलग-अलग चुनाव कार्यक्रम होते हैं। फिर इन पार्टियों के बीच चुनाव जीतने के लिए घमासान मुर्गा-भिड़न्त होती है। पूँजीवाद के समर्थक इन बातों को आसमान तक उछाल-उछालकर कहते हैं कि देखो 'हमारे आदर्श' जनवाद में चुनाव लड़ने की कितनी आजादी है। सब अपनी बात जनता के सामने रख देते हैं और फिर जनता जिसे ठीक समझती है उसे वोट देती है। हमारे देश के चुनावों के बारे में काँग्रेस नेताओं ने कहा कि इतनी आजादी तो दुनिया के किसी भी देश में नहीं दी जाती। लेकिन अगर हम इन चुनावों की तह में पहुँचने की कोशिश करें तो हमें पता चलेगा कि यह चुनाव की आजादी भी ठीक उसी तरह एक फरेब और धोखा है जैसे प्रेस की आजादी।

पूँजीवाद के समर्थक इंग्लैंड और अमरीका के जनवाद को आदर्श जनवाद की शक्ल में पेश करते हैं। हमारे देश में भी इस 'आदर्श' या 'शुद्ध जनवाद' के समर्थकों की कमी नहीं है। आजकल अमरीका दुनिया भर में जनवाद का ठेकेदार बन रहा है। इसलिए मिसाल के तौर पर हम अमरीका के चुनावों को ही ले रहे हैं।

अमरीका में कहने को बालिग मताधिकार है। लेकिन अमरीकी सरकार और पूँजीपति चुनाव के रास्ते में इतनी बाधाएँ खड़ी करते हैं कि वह मताधिकार अमल में सिर्फ कागज पर ही रहा जाता है। पहले तो हर वोट देने से पहले एक निश्चित कर या टैक्स अदा करना पड़ता है। इसे मतदान टैक्स कहते हैं। यह टैक्स अदा किए बगैर कोई भी वोटर वोट नहीं दे सकता। दूसरी बात है कम से कम शिक्षा की। जब चुनाव पास आते हैं तो अमरीका में रहनेवाले हबशियों की बहुत सख्ती के साथ परीक्षा ली जाती है कि वे पढ़ना लिखना जानते हैं या नहीं और उनका आम राजनीतिक ज्ञान वोट देने लायक है या नहीं। इस परीक्षा के जरिये हबशियों की बहुत बड़ी तादाद वोट के अधिकार से वंचित कर दी जाती है। जो बच जाते हैं उनमें अच्छी तादाद इसलिए वोट नहीं दे पाती कि उनके पास मतदान टैक्स अदा करने भर का पैसा नहीं होता। यही कारण है कि पिछले अट्ठावन सालों में अमरीकी काँग्रेस में सिर्फ एक बार एक ही हबशी उम्मीदवार कामयाब हो पाया है। यह आदर्श जनवाद का एक नमूना है।

आम चुनाव पर ऊपरवाली दोनों रुकावटों का क्या असर पड़ता है इसका जवाब

नीचे लिखे आँकड़े खुद बतायेंगे। 1936 में अमरीका के टेनेसी राज्य के गवर्नर का चुनाव हुआ था। वोटरों की सुची पर कुल 12 लाख मतदाताओं के नाम थे। शिक्षा का इम्तिहान न पास कर सकने व मतदान टैक्स न अदा कर सकने के कारण इनमें से कुल 3 लाख 52 हजार लोगों ने ही वोट दिया।

इन साढ़े तीन लाख वोटरों में से एक व्यक्ति के इशारे पर बैठनेवाले साठ या सत्तर हजार वोटर थे। क्रम्प नाम के इंशोरेन्स के मालिक के हाथ में उसके मातहत और खरीदे हुए सब मिलाकर 60 हजार वोट थे जिन्हें वह जहाँ चाहता इस्तेमाल कर सकता था। जाहिर है इन साठ हजार वोटरों की अपनी कोई आजादी नहीं थी। वे क्रम्प के हाथ की कठपुतली थे क्योंकि क्रम्प के हाथ में उनकी रोजी थी।

'आदर्श जनतंत्रवादी देश' अमरीका में "चुनाव की आजादी" का यह एक छोटा-सा उदाहरण है। 1946 के अमरीकी आम चुनाव में कुल 19 फीसदी वोटरों ने वोट दिया और अमरीकी पत्रकार इसे बहुत बड़ी कामयाबी समझते हैं। इससे साबित होता है कि पूँजीवादी जनवादी देशों के चुनाव आम चुन नहीं कहे जा सकते और न उन्हें "चुनाव की आजादी" का नाम दिया जा सकता है।

पूँजीवादी जनवाद क्या है? और पूँजीपतियों के शब्दकोश में जनवाद के क्या मानी है? यह इटली के 1947 के आम चुनाव से साफ जाहिर हो जाता है।

जन मोर्चे के खिलाफ प्रतिक्रियावादी ताकतों को जिताने के लिए अमरीकी तथा दूसरे साम्राज्यवादियों ने खुलेआम सशस्त्र हस्तक्षेप की धमकी दी। अमरीकी राज्य विभाग ने ऐलान किया कि अगर इटली में जन मोर्चे की जीत हुई तो खाना और औद्योगिक वस्तुओं की शक्ल में इटली को जितनी सहायता दी जाती है वह बन्द कर दी जायेगी। अमरीकी अखबारों ने लिखा कि जिन-जिन शहरों के लोग जन मोर्चे के उम्मीदवारों को वोट देंगे उन पर एटम बम गिराये जायेंगे। इन धमकियों को अमली शक्ल देने के लिए फौजों से लैस अमरीकी जंगी जहाज पहले से ही इटली के बन्दरगाहों में लंगर डाले पड़े थे। फ्रांस की सेना इटली की सरहद पर तैनात कर दी गयी, इटली की प्रतिक्रियावादी सरकार को अमरीकी टैंकों, तोपों तथा दूसरे हथियारों से लैस ताकतवार पुलिस संगठित करने की अनुमति दे दी गयी। प्रगतिशील ताकतों के खिलाफ खुले आतंकवादी उपाय काम में लाये गये। प्रतिक्रियावाद को जिताने के लिए धमकियाँ, रिश्वत, जालसाजी, गरज के सभी सम्भव उपाय काम में लाये गये, यहाँ तक कि पोप ने भी करीब 15 लाख पादरियों और धार्मिक प्रचारकों को प्रतिक्रियावादियों को जिताने और उनके लिए काम करने का आदेश दिया। इन पादरियों ने डटकर स्वर्ग के नाम पर वोटों का सौदा किया।

लेकिन अमरीका, फ्रांस, पोप आदि की इतनी सहायता के बाद भी जब प्रतिक्रियावादियों की जीत नहीं हुई तो वहाँ की सरकार और उनके मिनिस्टर सेल्वा ने जालसाजी से चुनाव के परिणाम को ही बदल दिया।

सन् 1947 में इटली का चुनाव पूँजीवादी जनवाद और 'चुनाव की आजादी' की

मक्कारी का एक ऐतिहासिक उदाहरण है।

अपने देश के 1952 के चुनाव को ले लीजिये।

देश के जिन-जिन हिस्सों में विरोधी पक्ष खासकर कम्युनिस्ट पार्टी मजबूत थी, उन सभी जगहों पर अन्त तक पुलिस का आतंक चलता रहा। कम्युनिस्ट पार्टी के कितने ही उम्मीदवारों पर वारण्ट तक नहीं हटाये गये। हैदराबाद में पार्टी ही गैर कानूनी थी और वहाँ के अधिकांश कार्यकर्ता आखिर तक जेलों में बन्द रहे। इसके बावजूद जब मद्रास में जनवादी मोर्चे की सरकार बनती नजर आयी तो वहाँ के राजपाल ने गैरकानूनी तरीके पर राजा जी को गद्दी सौंप दी।

उस चुनाव में काँग्रेस को देशभर में कुल 45 फीसदी वोट प्राप्त हुए थे। इसके माने हैं कि देश की सरकारी नीति को तैय करने में वोट देनेवालों को 55 फीसदी लोगों का कोई हाथ ही नहीं था। यह है "आदर्श जनवाद" में "चुनाव की आजादी"।

इसके बाद 1957 में केरल में जनता ने कम्युनिस्ट पार्टी को असेम्बली में बहुमत देकर सरकार चलाने का भार सौंपा। लेकिन, जैसा पहले कह आये हैं, शोषक वर्ग अपने बनाये विधान और अपने ही नियमों-कानूनों को तभी तक मान्यता देता है जब तक उससे पूँजीपति वर्ग की तानाशाही में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आती और जब जनता शोषक वर्ग के डण्डे-गुण्डे, पैसा, प्रचार आदि की परवाह किये बगैर अपने असली प्रतिनिधियों को वोट देने लगती है, जैसा उसने 1957 में केरल में किया था, तो पूँजीपति अपने जनवाद की सारी पवित्रता उठाकर ताक पर रखकर नंगी धींगा-मुस्ती पर उतर जाता है। केरल में उसने ऐसा ही किया था। उसकी पार्टी कांग्रेस ने पहले आन्दोलन का बहाना लेकर बदअमनी फैलायी और बाद में उसी बदअमनी का बहाना लेकर वहाँ राष्ट्रपति शासन लागू करवाया।

1965 के मध्यावधि चुनाव के समय जब बड़े पूँजीपति भूस्वामी वर्ग की पार्टी कांग्रेस ने देखा कि उसके सारे कुप्रचार के बावजूद जनता कम्युनिस्ट पार्टी को ही वोट देगी तो चुनाव से पहले ही उसने सारे नेताओं तथा कम्युनिस्ट पार्टी (मार्क्सवादी) के प्रमुख कार्यकर्ताओं को देशद्रोही कहकर गिरफ्तार कर लिया और जेल में डाल दिया। जब उस सबके बावजूद जनता ने जेलों में बन्द कम्युनिस्टों को ही अपना प्रतिनिधि चुना तो केन्द्र में स्थापित शोषक वर्ग की सरकार ने उन्हें जेलों से मुक्त करने से इन्कार कर दिया और वहाँ पर फिर से राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। 1970 में बंगाल में जब संयुक्त मोर्चे की सरकार ने जनता पर दमन चक्र चलाने और मेहनकशों के आन्दोलनों को कुचलने से इन्कार किया तो उसे भी भंग कर दिया गया था। यह पूँजीवादी जनतंत्रवाद के कुछ जिन्दा नमूने हैं।

इसके अलावा कहने के लिए तो अपने देश में हर कोई चुनाव में खड़ा हो सकता है और चुनाव लड़ सकता है। लेकिन अमल में अगर वह नामजदगी के साथ विधान सभा के लिए 250 रुपये और लोक सभा के लिए 500 रुपये जमानत नहीं जमा कर सकता

तो उसकी नामजदगी खारिज कर दी जायेगी। और अगर इधर-उधर से जोड़ बटोरकर जमानत जमा भी हो गयी तो चुनाव लड़ने में दिवाला निकल जाता है। सरकारी तौर पर असेम्बली के चुनाव में एक उम्मीदवार को 35 हजार तक और लोक सभा के लिए एक लाख रुपये तक खर्च करने की इजाजत है। पहले तो साधारण हैसियत का आदमी इतना रुपया ही नहीं इकट्ठा कर पाता है और इस तरह उसके लिए चुनाव *'न नौ मन तेल होगा न राधा नाचेगी'* वाली कहावत बनकर रहा जाता है। फिर बात दस या पचीस हजार तक ही नहीं रहती। यह सब जानते हैं कि पैसेवाले लोग 35 की जगह 70 हजार और एक लाख की जगह दो लाख खर्च करते हैं लेकिन हिसाब पेश करते हैं आधे से कम का। इस तरह साधारण हैसियत के आदमी के लिए यह चुनाव की आजादी में खड़े होने और चुने जाने की आजादी भी कागजी आजादी है। अमल में यह बेतहाशा पैसा बहाकर चुनाव जीतने की आजादी है।

जिस तरह पूँजीवादी राजसत्ता पूँजीपति वर्ग के हितों की रक्षा करती है उसी तरह पूँजीवादी जनवाद भी सिर्फ पूँजीपति वर्ग को ही फायदा पहुँचाता है। रही बात आम जनता की तो पहले तो हर व्यक्ति को मत देने और चुनाव में खड़े होने का हक ही नहीं मिलता और अगर संघर्ष और आन्दोलन आदि के दबाव से जनता को यह अधिकार मिल भी गया तो चुनाव में सिर्फ वे ही लोग सफल होते हैं जिनमें हाथ खोलकर रुपया बहाने की ताकत होती है। अखबारों आदि पर भी पैसेवालों का अधिकार होने के कारण उनके प्रचार का फायदा भी वे ही लोग उठा पाते हैं।

पूँजीपति वर्ग यह चुनाव का ढोंग तब तक चालू रखता है जब तक इससे उसके वर्ग स्वार्थों पर आँच नहीं आती। लेकिन ज्यों ही यह जनवाद पूँजीवाद की जड़ पर चोट करने की हिम्मत करता है त्योंही वह अपनी रक्षा के लिए सब कुछ करने को तैयार हो जाता है। इटली में 1942 में यही परिस्थिति थी। जनवादी शक्तियों को जीतता देखकर पूँजीपति वर्ग भयंकर से भयंकर गृहयुद्ध छेड़ने को तैयार हो जाता है जैसा उसने 1936 में स्पेन में किया था और जैसा अभी हाल में यहिया खाँ ने बंगला देश में किया था।

यह सही है कि कभी-कभी पूँजीपति वर्ग ऐसे कानून बनने देता है जिनसे कुछ देर के लिए उसके मुनाफे में कुछ कमी आ जाये या मजदूर को कुछ अधिकार मिल जायें। लेकिन यह उसकी युद्ध कला है। असन्तोष की आग को भड़कने न देने का यह उसका तरीका है। यह तभी तक चलता है जब तक कि मजदूर वर्ग पूँजीवादी समाज को उलटने की कोशिश नहीं करता। जब उसे मजदूर वर्ग की ताकत बढ़ती हुई दिखाई देती है तब वह जनतंत्रवाद, चुनाव, पार्लियामेन्ट आदि के पर्दे को उतार फेंकता है।

विधान सभा में दस-पाँच जनता के प्रतिनिधियों के पहुँच जाने से पूँजीपति वर्ग नहीं घबराता। लेकिन अगर कहीं उनमें गरीबों के प्रतिनिधियों का बहुमत हो जाता है, जोकि पूँजीवादी जनवाद में कोई आसान बात नहीं, तो वह जनवाद का शत्रु बनकर फासिज्म की शक्ल ले लेता है। बंगला देश में अय्यूब यहिया आदि का व्यवहार इसकी

जीती जागती मिसाल है।

हमने देखा कि पूँजीवादी चुनाव "हर चन्द सालों के बाद एक बार गरीबों को इस बात का फैंसला करने का अधिकार देता है कि अत्याचार करनेवाली श्रेणी के किस गुट से किस व्यक्ति को धारा सभा में जाकर उन पर (गरीबों पर-ले.) अत्याचार करना चाहिए।"(मार्क्स)

हमने यह भी देखा कि चुनावों की आड़ में पूँजीपति वर्ग छिपे तौर पर अपनी ताकत कायम रखने की कोशिश करता है। एक के बाद दूसरा राष्ट्रपति आता है, मंत्रिमण्डल बदलते रहते हैं, किन्तु सरकार की बुनियादी नीति में कोई अन्तर नहीं आता।

मजदूरों, किसानों गरीबों, शोषितों के लिए पूँजीवादी जनवाद में चुनाव की आजादी भी झूठ है, धोखा है। पूँजीवादी राजसत्ता और उनकी सरकार, जनतंत्र की संसदीय पद्धति में बहुमत के वोट से चुने जाने पर भी अपने राजनीतिक और अर्थहीन सार में अल्पमत की सत्ता का प्रतिनिधित्व करती है।

## सभा, संगठन और भाषण की आजादी

"शुद्ध जनवाद" के हिमायती पूँजीवादी जनवाद में सभा, संगठन और भाषण की आजादी का ढिंढोरा पीटते हैं। भारतीय संविधान को ही लीजिये इसे जनवादी संविधान कहा जाता है और इसमें जनता को सभाएँ करने, भाषण देने और संगठन बनाने के अधिकार को मान्यता दी गयी है। लेकिन सवाल सिर्फ मान्यता देने का नहीं है। सवाल अमल का है। हमारे देश में अमल में जो कानून बर्ता जा रहा है वह इन अधिकारों को कुचलने और छीनने का कानून है, इनकी रक्षा करने का नहीं है।

भारतीय दण्ड विधान की 127 से 232 तक की धाराओं में "किसी भी मजिस्ट्रेट या किसी पुलिस थाने के इंचार्ज" को यह अधिकार दिया गया है कि वह पाँच या उससे अधिक आदमियों के किसी भी सभा-सम्मेलन को "गैर कानूनी" करार दे सकता है और उसे तितर-बितर करने के लिए ताकत का इस्तेमाल कर सकता है। इस काम को पूरा करने के लिए जरूरत पड़ने पर वह सरकार की आज्ञा से फौज को भी बुला सकता है। मजिस्ट्रेट की गैरहाजिरी में फौज का कोई भी कमीशन्ड ऑफिसर इन अधिकारों को इस्तेमाल कर सकता है। जनता की चुनी हुई कोई संस्था, वह कितनी ही ऊँची क्यों न हो, मजिस्ट्रेट या पुलिस अधिकारी के फैंसले की जवाबतलबी नहीं कर सकती। किस जगह किस समय में और कितनी ताकत इस्तेमाल की जायेगी इसका फैंसला सिर्फ मजिस्ट्रेट, पुलिस या फौजी सरकार ही करेगी। ताकत इस्तेमाल करने के फैंसले से अगर कोई बहुत बड़ी दुर्घटना या नुकसान हो जाता है तो भी अगर वह काम नेकनीयती से किया गया है तो उसके लिए किसी मजिस्ट्रेट, पुलिस या फौजी ऑफिसर या उस आज्ञा पर अमल करनेवाले किसी दूसरे कर्मचारी को गुनहगार नहीं समझा जायेगा, यहाँ तक कि इनमें से किसी के खिलाफ सरकार की इजाजत के बिना किसी कानूनी अदालत में

मुकदमा तक नहीं चलाया जा सकता है।

अंग्रेजों का बनाया हुआ ऊपर का कानून अब भी ज्यों का त्यों लागू है। कांग्रेसी सरकार ने अगर उसमें कोई 'सुधार' किया है तो सिर्फ इतना कि 'गैर कानूनी भीड़' को तितर-बितर करने के लिए सिर्फ फौज ही नहीं समुद्री बेड़ा और हवाई बेड़ा भी बुलाया जा सकता है।

अमल में हम रोज देख भी यही रहे हैं कि जहाँ तक मजदूरों, किसानों और गरीब जनता का सवाल है उनके लिए सभाएँ करने के अधिकार के मानी हैं 144 के मातहत लाठी चार्ज सहने, गोली खाने और जेल जाने को आजादी। पूँजीपतियों, जमींदारों या कांग्रेसियों की मीटिंगों और जुलूसों पर रोक या लाठी चार्ज की खबर हम कभी नहीं सुनते। जो पुलिस कांग्रेस या शोषक वर्ग की सभाओं की हिफाजत करती है वही पुलिस गरीबों की सभाओं पर लाठियाँ बरसाती है।

यही हाल संगठनों का है। कागज पर मजदूरों को अपनी यूनियन बनाने का अधिकार है। लेकिन अमल में जो भी मजदूर इन यूनियनों में आगे बढ़कर काम करता है उसे निकाल दिया जाता है। जब मिल मालिक छंटनी करते हैं या मिलें बन्द करते हैं तो उन्हें कोई गिरफ्तार नहीं करता लेकिन इसके खिलाफ मजदूरों का संघर्ष छिड़ते ही यूनियनों के दफ्तरों में ताले जड़ दिये जाते हैं और उनमें काम करने वाले मजदूर जेलों में बन्द कर दिये जाते हैं।

इंग्लैण्ड में फासिस्टों को अखबार निकालने, सभाएँ करने और संगठन बनाने की पूरी आजादी है। 1946 में लंदन में फासिस्टों की 'कांग्रेस' हुई। उसमें खुलेआम जाति भेद के सिद्धान्त का प्रचार किया गया सरकार को हिटलर की नाजी पार्टी व फासिस्टों के संगठनों से कोई खतरा नजर नहीं आया और इसलिए उनके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गयी। हाँ विश्वशान्ति सम्मेलन को बहुत बड़ा हौवा समझकर उस पर रोक अवश्य लगा दी गयी।

कम्युनिस्टों और उनके संगठनों पर सख्ती और रोक तो सभी पूँजीवादी देशों में जोरों से जारी है। भाषण की आजादी पर पहला हमला तो सभाओं पर रोक लगाकर होता है और अगर उससे काम न चला तो व्याख्यानदाता को ही बगैर मुकदमा चलाये बन्द कर दिया जाता है। इस तरह पूँजीवादी समाज में सभा, संगठन और भाषण की आजादी सिर्फ पैसेवालों के लिए ही मानी रखती है, शोषितों के लिए नहीं।

## शिक्षा पाने और रोजी कमाने का अधिकार

पूँजीवादी समाज में शिक्षा का उद्देश्य होता है समाज और सरकार का काम चलाने के लिए छोटे-बड़े नौकरशाह और कलर्क पैदा करना। लेकिन यह काम भी आम शिक्षा का समान अधिकार आदि सुन्दर शब्दों के पीछे ही किया जाता है। कहने को स्कूलों और कॉलेजों में हर व्यक्ति अपने बच्चे भेजकर शिक्षित बना सकता है लेकिन अमल में यह

कभी सम्भव नहीं हो पाता। मजदूरों और किसानों की बात तो जाने दीजिए औसत मध्यम श्रेणी का आदमी भी आजकल बच्चों की शिक्षा का भार सम्भाल नहीं पाता और इसप्रकार शिक्षा भी पैसेवालों की ही बपौती बनकर रह जाती है। यह वैसी ही बात है कि एक आदमी के पैरों में भारी बोझ बाँ  ध दिया जाये और फिर उससे कहा जाये कि तुम दौड़ लगाने के लिए आजाद हो।

यही हाल रोजी कमाने की आजादी का है। मैं अच्छा वेतन और अच्छी रोजी की बात नहीं करता, क्योंकि वह तो बड़े घरानों के ऊँची शिक्षा पाये नौजवान ही पा सकते हैं। यहाँ तो आम रोजी का सवाल है। आये-दिन दफ्तरों और कारखानों में छटनी का बाजार गर्म रहता है और उन हजारों आदमियों को काम से अलग करते समय कोई यह नहीं सोचता कि कल उन्हें खाना कहाँ से मिलेगा। उनसे आशा की जाती है कि वे कहीं दूसरी जगह नौकरी तलाश कर लेंगे। ऐसे ही परिवारों की बहू-बेटियाँ घरेलू वेश्याएँ बनने को बाध्य होती हैं। रोजी न होने पर और रास्ता भी क्या है? चोरी, डकैती, वेश्यावृति यही सब होगा। आज रोजी कमाने का अधिकार रहते हुए भी लाखों करोड़ों लोग बेरोजगार हैं। अकेले यू.पी. में एक करोड़ के लगभग खेत मजदूर ऐसे हैं जो या तो बिलकुल ही खाली हैं या नाममात्र की मजदूरी पर काम करते हैं।

हमने देखा कि पूँजीवादी समाज में जनवाद के पहले भी काम करने के अधिकार का मतलब है काम से अलग करने का अधिकार और शाषितों के लिए इस अधिकार के मानी हैं बेरोजगार होकर भूखों मर जाने का अधिकार या व्यक्तिगत पतन की ओर जाने का अधिकार। यह सब इसलिए कि पूँजीवादी जनवाद गरीबों, शोषितों, मेहनतकशों का जनवाद नहीं है। यह शोषकों का, लूटेरों का जनवाद है। गरीबों का अच्छे-अच्छे शब्दों और वादों के पीछे भुलावें में रहकर यह सारा पाखण्ड उनकी क्रान्तिकारी भावनाओं को सुलाये रखता है और इस प्रकार उनके शोषण का रास्ता आसान और साफ बनाये रखता है।

## न्याय की समानता

देश में सबके लिए एक ही दण्ड विधान और एक ही अदालत है। पूँजीवाद के समर्थक इनकी तरफ इशारा करते हुए कहते हैं देखा इस समाज में कितनी समानता है। यहाँ का कानून किसी को रियायत नहीं करता। लेकिन सवाल यह नहीं है कि सबके लिए एक ही कानून लिखा है। सवाल यह है कि वह कानून मिलता कितनों को है।

सब जानते हैं कि सबके लिए एक ही कानून होते हुए भी अदालतों से फायदा वे लोग ही उठा पाते हैं जिनके हाथ में जी खोलकर खर्च करने की ताकत होती है और जो सैंकड़ों-हजारों देकर नामी वकील रख पाते हैं। जमींदार और किसान के मुकदमे में आमतौर से फैंसला जमींदार के हक में ही होता है क्योंकि वह अच्छे वकील रख सकता है, अदालती खर्चा बर्दाश्त कर सकता है, लेखपाल को रिश्वत दे सकता है, थानेदार को

दावत खिलाकर उससे अपने पक्ष में रिपोर्ट दिलवा सकता है, आदि। इसके अलावा अदालतों के जज, मजिस्ट्रेट भी आम तौर पर उसी के दोस्त रिश्तेदारों के घरानों के होते हैं और इस प्रकार उन तक सिफारिशें पहुँचाने में भी जमींदार या पूँजीपति ही कामयाब होता है। हमने देखा कि गरीब के लिए न्याय की समानता भी कोई मानी नहीं रखती।

पूँजीपति वर्ग के लिए आजादी के मानी हैं लेखकों, अखबारों और छापेखानों को खरीदने की आजादी, जनता को गुमराह करने और उनकी जबान बन्द करने की आजादी, अमन और कानून के नाम पर जनता पर गोलियाँ चलाने की आजादी, कानूनी हत्याओं के जरिये अपने राजनीतिक विरोधियों से छुटकारा पाने की आजादी।

शोषक वर्ग जेलों में बन्द अपने विरोधियों की चोरों की तरह हत्याएँ करते हैं, जैसे आन्ध्र, तेलंगाना, केरल और बंगाल में किया गया था। वे जेलों में बन्द असह्य निहत्थे राजनीतिक बन्दियों पर गोलियाँ बरसाकर उनसे छुटकारा पा लेते हैं और इसे नाम देते हैं अहिंसा का। पश्चिम बंगाल में कुछ वर्ष पूर्व ऐसा ही किया गया था।

जो सरकार कैदियों को अर्थात अपने आश्रितों को बेशर्मी के साथ कत्ल कर सकती है वह जनवादी कहलाने की हकदार नहीं है और जो सामाजिक व्यवस्था मजदूर-किसान कार्यकर्ताओं के इस प्रकार कत्लेआम की इजाजत देती है उसे जनवादी न कहकर पूँजीवादी तानाशाही कहना पड़ेगा।

## राष्ट्रीय अथवा जातीय समानता

पूँजीवादी जनवाद के समर्थक जातीय समानता के भी गुणगान करते हैं। लेकिन पूँजीवाद में राष्ट्रीय समानता के क्या मानी हैं इसे पूँजीवाद के समर्थक या उसके टुकड़ों पर पलनेवाले हिमायती नहीं बता सकेंगे। इस समानता का असली अर्थ पूछो मलाया और अल्जीरिया के उन उजड़े गाँवों से जहाँ से मानवता उखाड़कर मनहूस जेलों में बन्द कर दी गयी थी। जहाँ पति को पत्नी से, माँ को बेटे से और भाई को बहन से इसलिए अलग कर दिया गया था कि उन्होंने पूँजीवादी राष्ट्रीय समानता के सामने सर झुकाने से इन्कार कर दिया था। जिन गाँवों में कल तक प्यार बरसता था उन पर आग बरसाकर उन्हें गीदड़ों के हवाले कर दिया गया था, क्योंकि यहाँ के रहने वालों ने पूँजीवादी "राष्ट्रीय समानता" की असलियत को समझकर उससे छुटकारा पाने की ठान ली थी।

पूँजीवादी राष्ट्रीय समानता का एक और पाठ वियतनाम में अमरीकी पढ़ा रहे थे। वहाँ पर गोलीबारी, लूट और आगजनी का बाजार इसलिए गर्म किया गया था कि वियतानाम के निवासी साम्राज्यवादी "समानता" से तंग आ चुके थे और अपने देश पर विदेशियों का प्रभुत्व नहीं चाहते थे। इस "समानता" का एक ताजा नमूना पाकिस्तानी शासकों द्वारा सताया बंगला देश है।

दक्षिण अफ्रीका में जाति भेद की नीति पर चलने वाला औपनिवेशिक फासिज्म और अमरीकी हब्शियों के सारे अधिकार छीनकर पत्थरों की मार से उनके प्राण ले लेने वाला

अमरीकी पूँजीवादी भी अपने को जनवाद और जातीय समानता का हिमायती कहता है।

दरअसल जहाँ एक देश द्वारा दूसरे देश का, एक राष्ट्र द्वारा दूसरे राष्ट्र का और एक जाति द्वारा दूसरी जाति का दमन और शोषण ही धर्म हो वहाँ कभी राष्ट्रीय अथवा जातीय समानता हो नहीं सकती।

मेहनतकशों को धोखा देने के लिए और इस सच्चाई पर पर्दा डालने के लिए कि उनकी राजसत्ता शोषकों की राजसत्ता है, पूँजीपति अपनी तानाशाही को पार्लियामेन्ट या लोकसभा जैसी चुनी गयी संस्थाओं के पीछे छिपाते हैं और उसे जनवाद का नाम देकर दावा करते हैं कि यह जनता द्वारा संचालित सरकार है। लेकिन पूँजीवादी राजसत्ता में न तो कोई जनता द्वारा चलायी जानेवाली सरकार होती है और न हो सकती है। सभी पूँजीवादी राजसत्ताओं में असली हुकूमत करने वाले होते हैं बड़े पूँजीपति, उनके संघ, ट्रस्ट और बड़ी-बड़ी ज्वाइन्ट स्टॉक कम्पनियाँ। इंग्लैण्ड में जहाँ राजा है, अमरीका में जहाँ राजा नहीं है और स्पेन में जहाँ कुछ समय पहले तक खुलेआम फासिस्टों का राज्य था सभी देशों में ताकत पूँजीपतियों के ही हाथों में है। लेकिन शब्दों में 'पूँजीवादी राजसत्ता' के कितने ही अलग-अलग स्वरूप हों, उन सबका सार एक ही है। यह सब राजसत्ताएँ, उनका स्वरूप कुछ भी क्यों न हो, आखिर में पूँजीपति वर्ग की तानाशाही ही होती है।

अपने देश में भी वर्तमान भारतीय राज्य, जो पूँजीपतियों और जमींदारों का वर्ग शासन है और जिसका नेतृत्व बड़े पूँजीपति कर रहे हैं, देश की जातियों और उपजातियों के साथ जो व्यवहार कर रहा है वह कुछ कम शर्मनाक नहीं है। वह उपजातियों को आँचलिक या स्थानीय स्वायत्त शासन देने के बजाय उनके खिलाफ सेना का प्रयोग कर उनमें पृथक्त्व की भावना को जगा रहा है(नागा और मिजो), आदिवासियों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के बजाय उनके नेताओं की हत्याएँ करवाता है (बस्तर) और पिछड़े हुए भूमिहीन आदिवासियों को भूमि देने बजाय उनके खिलाफ पुलिस का अभियान चालाता है (नक्सलबाड़ी)।

## हमारी जनवाद की लड़ाई

यों तो जब से देश की जनता ने राजनीति में हिस्सा लेना प्रारम्भ किया है अर्थात जब से शासक वर्ग के खिलाफ जनआन्दोलन की शक्ल में जनता ने विरोध का प्रदर्शन आरम्भ किया है तभी से हुकूमत करनेवाली ताकत अपने दमनकारी हथियारों पर सान चढ़ाती आयी है लेकिन देश की आजादी के बाद से तो शासक वर्ग पर ताकत का नशा-सा छा गया है-- दमन के नये-नये तरीके, नये-नये कानून, नयी-नयी बन्दूकें और रायफलें।

कांग्रेसी नेता दावा करते हैं कि मौजूदा सरकार जनवादी सरकार है और देश की राजसत्ता जनता की राजसत्ता है। लेकिन किसी के दावा करने से ही तो वह दावा सही नहीं हो जाता। कांग्रेसी नेताओं का उपर्युक्त दावा सही है या गलत इसका जवाब ' उन पिचके हुए गालों और उन सूखे हुए शरीरों से मिलेगा जो हर समय हमारी नजरों के सामने

आते हैं, उन चीथड़ों से मिलेगा जो मुर्दों के शरीरों को पूरी तरह ढक भी नहीं पाते। इसका जवाब अखबारों में आये दिन छपनेवाली उन खबरों में मिलेगा जिनसे यह पता चलता है कि अपना और अपने बच्चों का पेट कर भर सकने के कारण न जाने कितने मर्द और औरतें मजबूर होकर आत्महत्या कर रहे हैं। इनका जवाब उन गोलीकाण्डों में, उन अश्रुगैस हमलों, लाठी चार्जों में, उन अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियों में, सभाओं पर लगाये जानेवाले उन प्रतिबन्धों में मिलेगा जो आज हमारे देश में हर उस जगह पर देखने में आते हैं जहाँ जनता अपने जीवन की अमानुषिक दशा को सुधारने के लिए संघर्ष करती है।

हमारे देश के करोड़ों किसान लगान, कर्ज और टैक्स के बोझ के नीचे कराह रहे हैं। खेत में मजदूर इतना भी नहीं कमा पाते कि पेटभर खाना खा सकें। मज़दूरों की हालत दिन ब दिन खराब होती जा रही है। स्कूलों के शिक्षकों, क्लर्कों, दफ्तरों के कर्मचारियों और मजदूरों में बेकारों की तादाद दिन ब दिन बढ़ती जा रही है, नौकरी पेशा लोगों की असली तनख्वाह घट रही है, शिक्षा महँगी होती जा रही है और दस्तकार, छोटे कारखानेदार तथा व्यापारी तबाह हो रहे हैं। क्या जनवादी सरकार में जनता की यही हालत होती है।

आज की सरकार अंग्रेज-अमरीकी साम्राज्यवादियों को इस बात की खुली छूट देती है कि वे हमारी आर्थिक व्यवस्था पर छाये रहें और हमारा पैसा लूटकर अपना पेट भरते रहें वह रजवाड़ों, जमींदारों, इजारेदारों और महाजनों को खुली छूट देती है कि वे मनमानी लूट-खसोट रहें।

हमारे देश की राजसत्ता जनता की राजसत्ता नहीं है, वह लुटेरों की राजसत्ता है, पूँजीवादी-भूस्वामी राजसत्ता है, जिनका नेतृत्व बड़ा बुर्जुआ करता है। इस प्रकार हमारे देश में जिस जनवाद का ढिढोंरा पीटा जाता है वह पूँजीवादी जनवाद है। वह सम्पन्न लोगों तथा पूँजीपतियों के हितों की रक्षा करता है और जनता पर दमन चक्र चलाता है।

## कम्युनिस्ट और पूँजीवादी जनवाद

लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि सर्वहारा इस जनवाद को पूँजीवादी जनवाद समझकर उसकी लड़ाई में भाग नहीं लेगा। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि सामन्तवाद या उससे पहले की सामाजिक व्यवस्थाओं के मुकाबले पूँजीवादी जनवाद शोषित वर्ग को संगठन आदि की काफी सुविधाएँ देता है। इसके अलावा जिस प्रकार पूँजीपति वर्ग को सामन्तवाद के खिलाफ जनवादी अधिकारों की लड़ाई लड़नी पड़ी थी, उसी प्रकार मजदूर वर्ग को भी देश में पूँजतियों के खिलाफ जनवादी अधिकारों के लिए लड़ना पड़ रहा है। लेनिन के शब्दों में **"अगर सर्वहारा वर्ग जनवाद के लिए मुस्तैदी के साथ बहुमुखी, क्रान्तिकारी संघर्ष नहीं चलाता है तो वह पूँजीपति वर्ग पर विजय की लड़ाई की तैयारी नहीं कर सकेगा।"** (लेनिन ग्रंथावलि, भाग 5, सफा 268)

मजदूर वर्ग पूँजीवादी जनवाद की लड़ाई में उदासीन नहीं रहता। पूँजीवादी जनवाद की सारी कमियों के बावजूद मजदूर वर्ग उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि--

1. पूँजीवादी जनवाद सामन्तवादी या फासिस्ट तानाशाही से अच्छा है।

2. साम्राज्यवादी युग में एक अवस्था ऐसी आ जाती है जब पूँजीवादी जनवाद भी पूँजीवाद के पैरों में बोझ बन जाता है। तब इजारेदार पूँजीपति जनवाद का जामा उतारकर फासिस्ट तानाशाही को अपनाने लगतें हैं। उस समय मजदूर वर्ग पूँजीपतियों को अपने पैरों का बोझ उतार फेंकने से रोकता है। वह पूँजीवादी जनतंत्र की लड़ाई को जोरदार बनाकर पूँजीवाद के पैरों के बोझ को ओर भारी बनाता है। दूसरे शब्दों में उस समय मजदूर वर्ग पूँजीवादी जनवाद की रक्षा की लड़ाई का नेतृत्व करता है।

3. पूँजीवादी जनवाद या उसकी रक्षा की लड़ाई का नेतृत्व करने में दरअसल मजदूर वर्ग जनता के जनवाद और फिर समाजवादी जनवाद के लिए रास्ता साफ करता है।

मजदूर वर्ग पूँजीवादी जनवाद की लड़ाई यह जानकर लड़ता है कि यह अल्पमत का जनवाद है। वह इस जनवाद की लड़ाई को क्रान्तिकारी उद्‌देश्यों की पूर्ति का साधन मात्र मानता है, इसे लक्ष्य नहीं मानता है। पूँजीवादी जनवाद की लड़ाई लड़ते हुए भी मजदूर वर्ग उसके प्रति कोई भ्रम नहीं रखता, उस लड़ाई को ही क्रान्ति नहीं समझ बैठता है। मजदूर वर्ग पूँजीवादी विधानवाद को पूँजीवाद के भण्डाभोड़ के लिए इस्तेमाल करता है। किन्तु विधान सभाओं की लड़ाई को ही सब कुछ नहीं समझ लेता।

इसीलिए सर्वहारा वर्ग के लिए जरूरी है कि पूँजीवादी राजसत्ता में भी जब कभी जनवादी अधिकारों पर आघात हो या उन पर रोक लगायी जाये तो डटकर उनका विरोध करे। यही कारण है कि जहाँ-जहाँ पूँजीपति वर्ग ने पूँजीवादी जनवाद को हटाकर फासिज्म स्थापित करने की कोशिश की है वहाँ-वहाँ मजदूर वर्ग ने पूँजीवादी जनवाद की रक्षा का नारा देकर फासिज्म का मुकाबला किया है। मजदूर संगठनों को मजबूत होते देखकर और मजदूर आन्दोलनों को तेजी पकड़ते देख यूरोप के कई एक देशों में पूँजीपति वर्ग ने यह कदम उठाया था। हमारे देश का शासक वर्ग भी मजदूरों के नेतृत्व में जनआन्दोलन को बढ़ता देख समय-समय पर कठोर दमन का सहारा लेता आया है। जनआन्दोलन को कुचलने के लिए अब भी उसने कितने ही दमन-कानून गढ़ रखे हैं।

जर्मनी, इटली आदि देशों में पूँजीपति वर्ग फासिज्म कायम करने में कामयाब हो गया था क्योंकि वहाँ का मजदूर आन्दोलन बिखरा हुआ था और वहाँ के दक्षिण पंथी सोशलिस्टों ने कम्युनिस्टों के साथ मिलकर फासिज्म का सामना करने से इन्कार कर दिया था। हमारे देश की कई एक मध्यम वर्गीय पार्टियाँ भी बहुत कुछ इसी प्रकार की भूमिका अदा कर रही हैं। एक ओर तो वे मजदूर व किसान आन्दोलन में फूट डालते हैं और दूसरी ओर चुनाव आदि में कम्युनिस्ट विरोध में कांग्रेस और साम्प्रदायिकतावादियों का साथ देते हैं। अगर इन नेताओं ने अपनी इस नीति को नहीं बदला तो हमारे देश में भी राष्ट्रीय आजादी की रक्षा के आन्दोलन के लिए इसका बड़ा घातक परिणाम हो सकता है।

पूँजीवादी जनवाद की रक्षा लड़ाई समाजवादी जनवाद की लड़ाई का ही अंश है और इसीलिए मजदूर वर्ग और उसकी पार्टी इस लड़ाई का भी मुस्तैदी के साथ नेतृत्व करती है।

हमारी जनवाद की लडाई का फौरी काम है।

--पूँजीवादी जनवादी अधिकारों की रक्षा।

--उन अधिकारों के विस्तार के लिए लड़ना।

इसके लिए आवश्यक है--

1. मजदूरों की वर्ग एकता अर्थात उनकी ट्रेड यूनियन एकता।

2. किसानों की वर्ग एकता।

3. मजदूरों किसानों तथा दूसरे जनवादी वर्गों की और उनकी पार्टियों की एकता अर्थात इन सबका एक वामपन्थी जनवादी मोर्चा।

4. जो तत्त्व इस एकता में रुकावट डालते हैं उनका भण्डाफोड़।

5. जनवादी अधिकारों पर किये गये हर छोटे छोटे हमले का तगड़ा मिला-जुला विरोध।

## पूँजीवादी जनवाद पर लेनिन के विचार

"पूँजीवादी जनवाद, हालाँकि, वह मध्ययुगीन रीतियों के मुकाबले एक बड़ी ऐतिहासिक प्रगति है, हमेशा सीमित, अधूरा, झूठा और मक्कारी से भरा हुआ होता है। वह अमीरों के लिए स्वर्ग और शोषितों तथा गरीबों के लिए धोखा है और पूँजीवाद के अन्तर्गत इसके अलावा वह और कुछ हो भी नहीं सकता।"( सं. ग्रं खण्ड 3 पृष्ठ 88)

"इस तरह के चालू शब्द मसलन जनप्रिय, राष्ट्रीय साधारण वर्गोपरि लगते हैं, लेकिन दरअसल पूँजीवादी जनवाद केवल शोषकों के हितों को ही आगे बढ़ाता है। और जब तक भूमि तथा दूसरे उत्पादन के साधन व्यक्तिगत सम्पत्ति बने रहते हैं तब तक सबसे अधिक जनवादी गणतंत्र भी अनिवार्यतः एक पूँजीवादी तानाशाही बना रहेगा-- मुट्ठी-भर पूँजीपतियों द्वारा मेहनतकशों के बहुत बड़े बहुमत को दबाने की मशीन मात्र। (काल्पनिक और वैज्ञानिक समाजवाद पर लेनिन के विचार, प्रोग्रेस पब्लिशर्स मास्को 1965 पृ. 139)

"....पूँजीवाद के अन्तर्गत पूर्णतया संयत जनतंत्रवाद असम्भव है....." (लेनिन सं. ग्र. खण्ड 2, पृ. 365)

**"पूँजीवादी सिद्धान्तकारों का कहना है कि जनतंत्रवाद में राजसत्ता किसी वर्ग की राजसत्ता नहीं रह जाती और वह पूरे समाज के हितों को अभिव्यक्त करती है। क्या यह बात सही है?"**

पूँजीवादी क्रान्तियों के समय जब पूँजीपति सत्ता के प्यासे थे, उन्होंने स्वंतत्रता, समानता, भाईचारे के महान नारे दिये। उन प्रारम्भिक दिनों में पूँजीवादी राजसत्ता सचमुच प्रगतिशील थी उसने आगे बढ़े हुए उत्पादन के सम्बन्धों को बढ़ाया। लेकिन पूँजीवाद के आरम्भ के दिनों में भी जब पूँजीवादी राजसत्ता में जनवाद अपनी चरम उन्नति पर था, तब भी वह सबके लिए जनवाद नहीं था। बस सिर्फ पूँजीपति वर्ग के लिए जनवाद था

और दलित वर्गों के लिए तानाशाही।

"तानाशाही का अनिवार्यतः यह अर्थ नहीं है कि उसमें उस वर्ग के लिए भी जनतंत्रवाद समाप्त हो जाये जो दूसरे वर्गों पर तानाशाही चला रहा है। लेकिन तानाशाही के अनिवार्यतः यह अर्थ जरूर होते हैं कि जिस वर्ग के खिलाफ या जिस वर्ग के ऊपर तानाशाही चलायी जा रही है उसके लिए जनतंत्रवाद समाप्त हो जाये।"(लेनिन सं. ग्र. खण्ड 3, पृष्ठ 81)

पूँजीवादी जनवाद का यह सीमित चरित्र साम्राज्यवाद के अन्तर्गत खास तौर पर उभरकर सामने आता है। साम्राज्यवादी युग में जैसे-जैसे चन्द इजारेदारों के हाथों में आर्थिक शक्ति केन्द्रित होती जाती है वैसे-वैसे राजनीतिक ताकत पर कब्जा करने और राज्य की पूरी मशीन को हथियाने के उनके प्रयास भी बढ़ते जाते हैं। लेनिन के शब्दों में--

"ऐसा एक भी राज्य नहीं है, चाहे वह कितना ही जनतांत्रिक क्यों न हो, जिसके विधान में पूँजीपति वर्ग को मजदूरों के खिलाफ सेना भेजने के अधिकार की गारन्टी के रास्ते अथवा आरक्षण न मौजूद हों और 'सार्वजनिक शान्ति भंग' की अवस्था में या शोषित वर्ग द्वारा अपनी गुलामी की स्थिति को भंग करने और इस प्रकार व्यवहार करने की स्थिति में मानों वह गुलाम न रहा हो, मार्शल लॉ के ऐलान का अधिकार न मौजूद हो।" (लेनिन सं. ग्र. खण्ड 3, पृष्ठ 89)

लेनिन के अनुसार साम्राज्यवाद का अर्थ है चौमुखी प्रतिक्रियावाद, खासकर राज्य तथा राजनीति के क्षेत्र में।

पूँजीवादी राज्यों के विधानों में नागरिकों के लिए बहुत से अधिकारों और आजादियों का ऐलान रहता है। मिसाल के लिए सार्वभौमिक मताधिकार, स्वतंत्र चुनाव, भाषण की आजादी, अखबार निकालने की आजादी आदि इस पुस्तक के आरम्भ में इन सब पर विस्तार से लिखा जा चुका है और बतलाया जा चुका है कि औसत नागरिक के लिए यह सब ऐलान थोथीं लफ्फाजी के अलावा और कुछ नहीं है। लेकिन पूँजीपति वर्ग यह सब ऐलान यों ही नहीं करता। जर्मन दार्शनिक हेगेल ने अपनी पुस्तक 'स्मृति दर्शन' में कहा है कि राज्य के लिए नागरिक की खामोशी के मुकाबले भाषण की आजादी कहीं कम खतरनाक है क्योंकि खामोशी ऐसी सम्भावना पैदा करती है कि नागरिक किसी खास मसले पर अपने विरोध प्रकट न करें। जबकि बहस बस छिपे विरोध और असन्तोष को एक निश्चित दिशा में जाने का रास्ता देती है। उससे नागरिक एक प्रकार का असन्तोष अनुभव करने लग जाता है और इस प्रकार राज्य के दूसरे काम बगैर किसी बाधा के पूर्व निर्धारित रास्ते पर चलते रहते हैं।

औपचारिक रूप से भी पूँजीवादी जनवाद बहुत ही सीमित है। यह सही है कि चुनाव के समय पर जनता अपना मतदान कर सकती है, लेकिन वह प्रत्यक्ष रूप से राज्य के आर्थिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। लेनिन के अनुसार--

"प्रत्येक कुछ वर्षों में यह निश्चित करना कि शासक वर्ग के कौन-से सदस्य विधान सभा के जरिये जनता को दबायेंगे और कुचलेंगे पूँजीवादी संसदीय प्रणाली का यही असली तथ्य है, सिर्फ संसदीय संवैधानिक राज्यतंत्रों में ही नहीं बल्कि सर्वाधिक लोकतंत्रीय गणराज्यों में भी।" (लेनिन स. ग्रं. खण्ड 2, पृष्ठ 238)

पूँजीवादी समाज के अन्तर्गत आजादी एक ऐशोआराम की चीज है जो सिर्फ अच्छे खाते-पीते लोगों को ही नसीब होती है। यह एक धोखा है जिसके माध्यम से गुलामी को आजादी कहकर बेचा जाता है। लेनिन के शब्दों में "नगण्य अल्पसंख्यकों के लिए जनतंत्र, पैसेवालों के लिए जनतंत्र-- यही पूँजीवादी समाज का जनवाद है।" (लेनिन, सं. खण्ड 3, पृष्ठ 373) उस समाज में पूँजी की सत्ता सब कुछ है, सट्टा बाजार सब कुछ है जबकि संसद और चुनाव कठपुतलियाँ हैं....."(लेनिन, सं. ग्र. खण्ड 2 पृ. 292)

इस प्रकार हम देखते हैं कि एक व्यवसाय के रूप में पूँजीवाद और साम्राज्यवाद के मातहत मेहनतकश जनता के लिए वास्तविक जनवाद के लिए कोई स्थान नहीं है। फिर भी लेनिन ने इस धारणा को भ्रान्तिपूर्ण कहा कि पूँजीवादी समाज में सर्वहारा वर्ग को जनवादी रूपान्तरणों के लिए संघर्ष नहीं करना चाहिए क्योंकि वह व्यर्थ एवं धोखे की चीज है।

## पूँजीवादी समाज में जनवाद के लिए संघर्ष

यह सही है कि पूँजीवादी जनवाद मेहनतकश जनता के अत्यन्त आवश्यक भागों को--काम की गारन्टी, स्त्रियों के लिए समान अधिकार, भूमि सुधार, जातियों तथा उपजातियों के लिए समान अधिकार, न्यायपूर्ण चुनाव पद्धति आदि को पूरा नहीं कर सकता। फिर भी--"यह सोचना भूल होगी कि जनवाद के लिए आन्दोलन सर्वहारा को समाजवादी क्रान्ति से विमुख कर देगा अथवा उसे (समाजवादी क्रान्ति के लक्ष्य को--ले. ) छिपा लेगा, ढक लेगा" ( लेनिन सं. ग्र. खण्ड 22 पृ. 144) "दुनिया का कोई भी जनवाद वर्ग आन्दोलन तथा पैसे के सामर्थ्य को समाप्त नहीं कर सकता। यह ऐसी चीज नहीं जो जनवाद को महत्त्वपूर्ण तथा उपयोगी बनाती है। जनवाद का महत्त्व यह है कि वह वर्ग आन्दोलन को विस्तृत, खुला तथा जागृत बना देता है।" (लेनिन, सं. ग्र. खण्ड 18 पृ. 335)

"जनवाद वर्ग अत्याचार को समाप्त नहीं करता। वर्ग आन्दोलन को वह केवल अधिक स्पष्ट, विस्तृत, अधिक खुला तथा निर्भीक बना देता है।" (लेनिन सं. ग्र. खण्ड 23 पृ. 73)

"इसीलिए सर्वहारा को, जो जनवादी आन्दोलन के साथ है और उस आन्दोलन का अगुवा है, पूँजीवादी जनवाद में निहित नये विरोधों को अथवा नये आन्दोलन को एक क्षण के लिए भी नहीं भूलना चाहिए।" (लेनिन, सं. ग्र. खण्ड 1, पृ. 496)

इसीलिए जनवाद की लड़ाई में कम्युनिस्ट, सबसे अधिक दृढ़ तथा संगठित राजनीतिक शक्ति रहे हैं। इजारेदारियों के आर्थिक तथा राजनीतिक अधिकारों पर प्रतिबन्ध, ट्रेड यूनियन अधिकारों का विस्तार, खेतिहर सुधार, जनतंत्र और राष्ट्रीय हितों की सुरक्षा साम्राज्यवादी आक्रमण का अन्त और विश्वशान्ति की वे दृढ़तापूर्वक माँग करते रहे हैं।

कम्युनिस्ट पार्टियों के नतृत्व में मेहनतकश जनता समाज के जनवादीकरण के लिए कठोरतम संघर्ष कर रही है। वह जानती है कि जनवाद के लिए उसके संघर्ष का समाजवाद के लिए संघर्ष के साथ गहरा सम्बन्ध है। पूँजीपति वर्ग की नंगी तानाशाही के खिलाफ जनसाधारण का जनवादी अधिकारों का संघर्ष समाजवादी क्रान्ति को स्थगित नहीं करता बल्कि उसे आगे बढ़ाता है।

(समाजवादी जनवाद, जनता का जनवाद और राष्ट्रीय जनवाद पर माला की पाँचवी पुस्तक में लिखा गया है।)

□□□

मार्क्सवाद-लेनिनवाद को पढ़ने-पढ़ाने के दो तरीके हैं। एक तरीका है, उसे कोरे सिद्धान्त की तरह किताबी तौर पर पढ़ना और दूसरा तरीका है, उसे जनता की रोजमर्रा की जिन्दगी से मिलाकर रचानात्मक तौर पर पढ़ना। किताबी तौर पर पढ़ने-पढ़ाने से मतलब है जैसे हमारे देश के स्कूलों में किताबें पढ़ाई जाती हैं या यों कहिए कि रटाई जाती हैं।

इस तरह से पढ़ना-पढ़ाना मजदूरों और किसानों को बड़ा रूखा लगता है। इससे उनके पल्ले कुछ नहीं पड़ता। पढ़ने-पढ़ाने का यह तरीका गलत है।

रचनात्मक तरीका यह है कि मार्क्सवाद की हर एक बात को अपने चारों तरफ की जिन्दगी से मिसालें लेकर उन पर लागू करते चलना। इसके बगैर मार्क्सवाद निर्जीव-सा लगेगा। मजदूर को उसके शहर और कारखानों की मिसालों के साथ समझाने से उसे मार्क्सवाद एक जिन्दा सिद्धान्त लगेगा। तभी उसे मार्क्सवाद में अपनी जिन्दगी के सब सवालों का हल नजर आयेगा। इसे कहते हैं सिद्धान्त को काम और जीवन की कसौटी पर उतारते हुए पढ़ना-पढ़ाना। इसी तरह किसानों को समझाने के लिए उनकी जिन्दगी से मिसालें लेनी चाहिए।

-शिव वर्मा

गार्गी प्रकाशन

मूल्य : दस रुपये